शृंगार शतक

भर्तृहरि

श्रृंगार शतकम्

॥ श्रृंगारशतकं भर्तृहरिविरचितम् ॥

छन्द - वसंततिलका

शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ॥
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

अन्वय :

शम्भुस्वयम्भुहरयो - शम्भु + स्वयंभु (ब्रह्मा) + हरयो हरिणेक्षणानां - हरिण + ईक्षणानाम्

कुसुमायुधाय - कुसुम + आयुधाय

अर्थः

जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को मृगनयिनी कामिनियों के घर का काम करने के लिए दास बना रखा है, जिनके विचित्र चरित्रों का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता, उन पुष्पायुध, भगवान् कामदेव को हमारा नमस्कार।

छन्द - वंशस्थ

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ॥
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥ २॥

अन्वय :

स्मिति - मुस्कान

लज्जा – शर्म

पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः पराङ्मुखैः अर्ध कटाक्ष + वीक्षणैः

पराङ्मुख - अनदेखा करना भी- भय कटाक्ष - तिरछी नजर वीक्षण - देखना वचोभिरीर्ष्याकलहेन - वचः भिः ईर्ष्या कलहेन

अर्थः

मन्द - मन्द मुस्काना, लजाना, भयभीत होना, मुंह फेर लेना, तिरछी नजर से देखना, मीठी-मीठी बाते करना, ईर्ष्या करना, कलह करना और अनेक तरह के हाव-भाव दिखाना - ये सब स्त्रियों में पुरुषों को बंधन में फंसाने के लिए ही होते हैं, इसमें संदेह नहीं।

छन्द - शालिनी

भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ॥
लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधं च ॥ ३॥

अन्वय :

भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षाः - भ्रू चातुर्यात् + कुञ्चित अक्षाः स्त्रीणामेतद् - स्त्रीणाम् + एतत् चायुधं - च + आयुधं

भ्रू-भौंह अक्षि - आँखें कटाक्ष - तिरछी नजर कुञ्चित – मुड़ा या सिकुड़ा स्निग्धा - प्रेममय प्रस्थितं – शुरुआत

अर्थः

चतुराई से भौंहे फेरना, आधी आँख से कटाक्ष करना, मीठी मीठी बातें करना, लज्जा के साथ मुस्कुराना, लीला से मन्द-मन्द चलना और फिर ठहर जाना। ये भाव स्त्रियों के आभूषण और शस्त्र हैं।

छन्द - शिखरिणी

क्वचित्सुभ्रूभङ्गैः कचिदपि च लज्जापरिणतैः क्वचिद् भीतित्रस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलसितैः ॥

नवोढानामेभिर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैः स्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दिशः ॥ ४॥

अन्वय :

क्वचित्सुभ्रूभङ्गैः - क्वचित् + सु + भ्रू + भङ्गैः क्वचिदपि - क्वचित् + अपि कुमारीणामेभिर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैः नव उढानाम + इभी +

वदन + कमलैः + नेत्र + चलितैः स्फुरन्नीलाब्जानां - स्फुरत् + नील + अब्जानाम्

कचित् – कभी, भीति – भय, इभी – हथिनी, उढा - भार्या, शादीशुदा,

स्फुरत् – चञ्चल, अब्ज - पानी में होने वाला, कमल, इव - के समान

अर्थः

कामी पुरुषों को, सुन्दर भौहों से कटाक्ष करने वाली, शर्म से सिर नीचे कर लेने वाली, भय से भीत होने वाली, लीलामय विलास करने वाली, नवीन ब्याही कामिनियों के मुखकमलों की खूबसूरती बढ़ाने वाले नीलकमलों के समान चञ्चल नेत्रों से दसों दिशाएं पूर्ण दिखती हैं।

छन्द - शादूलाविक्राडित

वक्त्रं चन्द्रविडम्बि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने वर्णः
स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः ॥
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली वाचां हारि च मार्दवं
युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम् ॥ ५ ॥

अन्वय :

स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः स्वर्णम् अपाकरिष्णुः अलिनी जिष्णुः
पङ्कजपरीहासक्षमे - पङ्कज परीहास क्षमे
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ वक्षोजौ इभ कुम्भ विभ्रम हरौ

वक्लं - मुख विडम्बि - के समान, के जैसा परीहास - मजाक उड़ाना
अपाकरिष्णुः - श्रेष्ठ, से बढ़ के अलिनी – भौंरा, भंवरा जिष्णुः -
अग्रगण्य, उत्कृष्ट, जीतना चयः - समूह इभ - हाथी, आठ विभ्रम -
शोभा हर – रखना, गुर्वी - बड़ी, विस्तृत

अर्थः

चन्द्रमा स्वरुप मुख, कमल रूपी नेत्र, स्वर्ण के समान शारीरिक कान्ति, भौरों के पुञ्ज को जीतनेवाले केश, गजराज के गण्डस्थली की शोभा का अपमान करने वाले वक्ष, विशाल नितम्ब, मनोहर वाणी और कोमलता - ये सब स्त्रियों के स्वाभाविक भूषण हैं।

छन्द - शिखरिणी

स्मितं किञ्चिद् वक्त्रे सरलतरलो दृष्टिविभवः परिस्पन्दो
वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः ॥

गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिह न
हि रम्यं मृगदृशः? ॥ ६॥

अन्वय :

वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः वाचाम् अभिनव विलास उक्ति सरसः गतानामारम्भः गतानाम आरम्भः किसलयितलीलापरिकरः किसलयित + लीला + परिकरः स्पृशन्त्यास्तारुण्यं - स्पृशन्त्याः + तारुण्यम्

स्मितं - मन्दहास विभवः - गुणपरिस्पन्द - धड़कता हुआ अभिनव - नवीन, तरुणपरिकरः – प्रचुर

अर्थः

उठती जवानी की मृगनयनी सुंदरियों के कौन से काम मनोमुग्धकर नहीं होते ? उनका मन्द-मन्द मुस्काना, चञ्चल कटाक्ष, नवीन भोग-विलास की उक्ति से रसीली बातें करना और नखरे के साथ मन्द-मन्द चलना- ये सभी हाव-भाव कामियों के मन को शीघ्र वश में कर लेते हैं।

छन्द - शार्दूलविक्रीडित

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुखं घातव्येष्वपि किं?
तदास्यपवनः, श्रव्येषु किं? तद्वचः ॥

किं स्वाद्येषु? तदोष्ठपल्लवरसः; स्पृश्येषु किं ? तद्वपुः ध्येयं कि?
नवयौवनं सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥ ७ ॥

अन्वय :

घातव्येष्वपि - घ्रातव्य + एषु + अपि तदोष्ठपल्लवरसः - तत् + ओष्ठ + पल्लव + रसः स्वाद्येषु - स्वाद + ऐषु द्रष्टव्य - देखने वाला, देखने लायक प्रातव्य – सूंघने लायक स्वाद्येषु - स्वाद लेने के लिए

तद्वचः - तत् + वचः, तद्वपुः - तत् + वपुः, वपुः – शरीर, विभ्रमः - भ्रम से पूर्ण, भ्रमपूर्ण उपस्थिति

अर्थः

रसियों के देखने योग्य क्या है? मृगनयनी कामिनियों का प्रेमपूर्ण प्रसन्न मुख। सूंघने योग्य क्या है? उनके मुंह की श्वास वायु। सुनने योग्य क्या है? उनकी बातें। सवादिष्ट पदार्थ क्या है? उनके होठों की कलियों का रस । छूने योग्य क्या है? उनका कोमल शरीर । ध्यान करने योग्य क्या है? उनका नवयौवन और विलास। इनकी भ्रमपूर्ण उपस्थिति सर्वत्र है।

छंद - वसन्ततिलका

ऐताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-झङ्कारनुपुरपराजितराजहंस्यः ॥
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशम् तरुण्यो वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः
कटाक्षैः ॥ ८ ॥

अन्वयः

स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थझङ्कारनुपुरपराजितराजहंस्यः -

स्खलत् + वलय + संहति + मेखल उत्थ झङ्कार + नुपुर पराजित - राजहंस्यः

स्खलत् – फिसलना, वलय - चूड़ियाँ, कङ्गन, संहति - खनक,

मेल – एकरूपता, मेखल - करधनी, नुपुर - घुंघरू, तरुण्य – यौवन,

वित्रस्त – भयभीत, सदृश - के समान

अर्थः

चञ्चल कङ्गन, ढीली कौंधनी और पायजेबों के घुंघरुओं की मधुर झनकार से राजहंसों को शमनिवाली नवयुवती सुंदरियाँ, भयभीत हिरणी के समान कटाक्ष करके, किसके मन को विवश नहीं कर देती ?

छंद - दोधक

कुङ्कुमपङ्ककलङ्कितदेहा गौरपयोधरकम्पितहारा ।
नूपुरहंसरणत्पदपद्मा के न वशीकुरुते भुवि रामा ? ॥ ९ ॥

अन्वयः

कुङ्कुमपङ्ककलङ्कितदेहा कुकुम + पङ्क कलङ्कित + देहा
गौरपयोधरकम्पितहारा – गौर + पयोधर + कम्पित + हारा

नूपुरहंसरणत्पदपद्मा पुर हंस रणत्+ पद + पद्मा

अर्थ:

जिसकी देह पर केसर लगी है, गोर गोर स्तनों पर हार झूल रहा है और नूपुर रुपी हंस जिसके चरणकमलों में मधुर मधुर शब्द कर रहे हैं- ऐसी सुन्दरी इस पृथ्वी पर किसके मन को वश में नहीं कर लेती ?

छंद – वसन्तालिका

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधाये नित्यमाहुरबला इति कामिनीस्ताः ॥
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ? ॥ १० ॥

अर्थ:

स्त्रियों को "अबला" कहनेवाले श्रेष्ठ कवियों की बुद्धि निश्चय ही उलटी है। भला, जो अपने नेत्रों के चञ्चल कटाक्षों से महाबली इन्द्रादि देवताओं को भी मार लेती है, वे "अबला" किस तरह हो सकती है।

छंद - अनुष्टुभ्

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसञ्चारसूचितेषु प्रवर्तते ॥ ११॥

अर्थः

कामदेव निश्चय ही सुन्दर भौंहवाली स्त्रियों की आज्ञापालन करने वाला चाकर है; क्योंकि जिनपर उनके कटाक्ष पड़ते हैं, उन्ही को वह जा दबाता है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने अन्तर्वक्त्रमपि
स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः ॥
मुक्तानां सतताधिवासरुचिरौ वक्षोजकुम्भाविमावित्यं तन्विः वपुः
प्रशान्तमपि ते क्षोभं करोत्येव नः ॥ १२ ॥

अर्थः

ऐ कृशांगी! तेरे बाल सँवरे हैं, तेरी आँखें बड़ी और कानो तक हैं, तेरा मुख सुंदर और सफ़ेद दन्तपंक्ति से शोभायमान है, तेरे वक्षों पर मोतियों के हार झूलते हैं; पर तेरा शीतल और शान्तिमय शरीर भी मेरे मन में तो विकार ही उत्पन्न करता है, यह अचम्भे की बात है !

छंद – अनुष्टुभ

मुग्धेः धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।

यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥ १३॥

अर्थः

हे मुग्धे सुन्दरी ! धनुर्विद्या में ऐसी असाधारण कुशलता तुझमे कहाँ से आयी, कि बाण छोड़े बिना, केवल गुण से ही तू पुरुष के हृदय को बेध देती है ?

छंद - अनुष्टुभ

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु नानामणिष्वपि ।

विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत् ॥ १४ ॥

अर्थः

यद्यपि दीपक, अग्नि, तारे, सूर्या और चन्द्रमा सभी प्रकाशमान पदार्थ मौजूद हैं, पर मुझे एक मृगनयनी सुन्दरी बिना सारा जगत अन्धकार पूर्ण दिखता है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

उद्वृत्तः स्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलतेरागाधिष्ठितमोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम् ॥

सौभाग्याक्षरमालिकेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयंमध्यस्थाऽपि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा ? ॥ १५॥

अर्थः

हे कामिनी ! तेरे गोल गोल उठे हुए भारी वक्ष, चञ्चल नेत्र, चपल भौंह- लता और रागपूर्ण नवीन पत्तों सदृश सुर्ख होंठ अगर रसियों के शरीर में वेदना करें तो कर सकते हैं, पर यह समझ में नहीं आता कि, कामदेव के निज हाथों से लिखी सौभाग्य की पंक्ति सी - रोमावली - मध्यस्थ होने पर भी क्यों चित्त को सन्तप्त करती है।

छंद – अनुष्टुभ्

गरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।

शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा ॥ १६ ॥

अर्थः

वह स्त्री गुरु स्तनभार से, भास्कर के सामान प्रकाशमान मुखचन्द्र से और शनैश्वर के सदृश मन्दगामी दोनों चरणों से ग्रहमयी सी मालूम होती है।

छंद - वसंततिलका

तस्याः स्तनौ यदि घनौ, जघनं च हारिवक्त्रं च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम् ॥

पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छापुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ १७ ॥

अर्थः

हे चित्त ! उस स्त्री के पुष्ट स्तनों, मनोहर जाँघों और सुन्दर मुख को देखकर वृथा क्यों व्याकुल होते हो ? यदि तुम उसके कठोर स्तनों कि प्रभृत्ति का आनन्द लेना ही चाहते हो, तो पुण्य करो; क्यूंकि बिना पुण्य किये मनोरथ सिद्ध नहीं होते।

छंद

उपजातिमात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ॥

सेव्या नितम्बाः किमु भूधरणामुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ॥ १८ ॥

अर्थः

हे योग्य अयोग्य के विचार में निपुण पुरुषों! आप पक्षपात को छोड़, कर्तव्य-कर्म को विचार और शास्त्रों को देखकर यह बात कहिये कि, इस लोक में जन्म लेकर मनुष्य को पर्वतो के नितम्ब सेवन करने

चाहिए अथवा कामदेव कि उमन्ग से मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई विलासवती तरुणी स्त्रिओं के नितम्ब।

छंद

स्रग्धरासंसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती

पण्डितानांतत्त्वज्ञानामृताम्भः प्लवलुलितधियां यातु कालः कथञ्चित्

॥ नोचेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोगसम्भोगिनीनां

स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलोलोद्यतानाम्

॥ १९॥

अर्थः

इस संसार में जिसकी अन्तिम अवस्था अतीव चञ्चल है, उन्ही बुद्धिमानो का समय अच्छी तरह कटता है, जिनकी बुध्दि तत्वज्ञान रुपी अमृत सरोवर में बारम्बार गोते लगाने से निर्मल हो गयी है अथवा उन्ही का समय अच्छी तरह अतिवाहित होता है, जो नवयौवनाओं के कठोर और स्थूल कूचों एवं सघन जङ्घाओं को सकाम स्पर्श कर कामदेव का उपभोग करते हैं।

छंद – अनुष्टुभ

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः ।

पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ २०॥

अर्थः

चन्द्रकान्त से मुख, महानील जैसे केश और पद्मराग के समान दोनों हाथों से वह स्त्री रत्नमयी सी मालूम होती है।

छंद – वसन्ततिलका

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्तिनिर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ॥

एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणांकि नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥

२१॥

अर्थः

चतुर मृगनयनी स्त्रियां पुरुष के हृदय में एक बार दया से घुसकर उसे मोहित करतीं, मदोन्मत्त करतीं, तरसातीं, चिढ़ातीं, धमकातीं, रमण करतीं और विरह से दुःख देती हैं। ऐसा काम है, जिसे ये मृगलोचनि नहीं करतीं।

छंद

उपजातिविश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणां छायासु तन्वी विचचार काचित् ।
स्तनोत्तरीयेण करोद्धृतेन निवारयन्ती शशिनो मयूखान् ॥ २२ ॥

अर्थः

वन के वृक्षों की छाया में बारम्बार विश्राम करती हुई, वह विरहिणी स्त्री, अपने कोमल शरीर की रक्षा के लिए, अपना आँचल हाथ में उठा, उससे चन्द्रमा की किरणों को रोकती हुई घूम रही है।

छंद

उपजातिअदर्शने दर्शनमात्रकामा दृष्टा परिष्वङ्गसुखैकलोलाः ॥
आलिङ्गितायां पुनरायताक्ष्यां आशास्महे विग्रहयोरभेदम् ॥ २३ ॥

अर्थः

जब तक हम विशाल नयनी कामिनी को नहीं देखते, तब तक तो उसे देखने ही की इच्छा रहती है, दर्शन नसीब हो जाने पर, उसे आलिंगन करने की लालसा बलवती होती है। जब आलिंगन भी हो जाता है, तब तो यह इच्छा होती है कि, यह कामिनी हमारे शरीर से अलग ही न हो - हमारा दोनों का शरीर एक हो जाये ।

छंद - रथोद्धता

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखीचन्दनं वपुषि कुङ्कुमान्वितम् ॥
वक्षसि प्रियतमा मनोहरास्वर्ग एव परिशिष्ट आगतः ॥ २४ ॥

अर्थः

अधखिले मालती के फूलों की माला गले में पड़ी हो, केसर मिला चन्दन शरीर में लगा होऔर हृदयहारिणी प्राणप्यारी छाती से चिपटी हो तो समझ लो, स्वर्ग का शेष सुख यही मिल गया।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

प्राङ्गामेति मनागमानितगुणं जाताभिलाषां ततःसव्रीडं तदनु
श्लथीकृततनु प्रध्वस्तधैर्यं पुनः ॥
प्रेमार्द्र स्पृहणीयनिर्भररहःक्रीडाप्रगल्भं ततोनिःशङ्काङ्ग
विकर्षणाधिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥ २५ ॥

अर्थः

पहले पहले तो न न कहती है। इसके बाद थोड़ी थोड़ी अभिलाषा करती है। इसके बाद अंगों को ढीला कर देती है फिर अधीर हो, प्रेम के रस में सराबोर हो जाती है। इसके भी बाद, एकान्त क्रीड़ा की इच्छा करती है और भोग विलास में तरह तरह की चतुराई दिखाती हुई, निःशङ्क होकर मर्दन चुम्बनआदि से असाधारण सुख देती है। ये सब

गन कुलबलाओं में ही होते हैं, इसलिए इन कुलकामिनियों के साथ ही रमण करना चाहिए।

छंद - आर्या

आमीलितनयनानां यत्सुरतरसोऽनु संविदं भाति।
मिथुनैर्मिथोऽवधारितमवितथमिदमेव कामनिर्वहणम्॥ २७॥

अर्थः

आलस्यपूर्ण नेत्रोंवाली स्त्रियों की काम से तृप्ति करना, स्त्री पुरुष दोनों का परस्पर काम्पूजन है, जिसको काम-क्रीड़ा करनेवाले दोनों स्त्री-पुरुष ही जानते हैं।

छंद - पुष्पिताग्रा

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसांयदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः।
यदपि च न कृतं नितम्बिनीनांस्तनपतनावधि जीवितं रतं वा॥ २८॥

अर्थः

विधाता ने दो बातें बड़ी अनुचित की हैं- १) पुरुषों में अत्यंत बुढ़ापा होने पर भी काम विकार का होना; २) स्त्रियों का कुच गिर जाने पर भी जीवित रहना और काम चेष्टा करना।

छंद - अनुष्टुभ्

एतत्कामफलं लोके यद्द्वयोरेकचित्तता।

अन्यचित्तकृते कामे शवयोरेव सङ्गमः ॥ २९ ॥

अर्थः

समागम के समय स्त्री पुरुष का एक हो जाना ही काम का फल है। यदि समागम में दोनों का चित्त एक न हो तो वह समागम नहीं; वह तो मृतकों का समागम है।

छंद

प्रणयमधुराः प्रेमोद्गाढा रसादलसास्ततोभणितिमधुरा मुग्धप्रायाः प्रकाशितसम्मदाः ॥

प्रकृतिसुभगा विश्रम्भार्हाः स्मरोदयदायिनोरहसि किमपि स्वैरालापा हरन्ति मृगीदृशाम् ॥ ३० ॥

अर्थः

कामिनियों के प्रणय प्रीती से मधुर प्रेम रस से पगे, काम की अधिकता से मन्दे, सुनने में आनन्दप्रद, प्रायः अस्पष्ट, सहज सुन्दर, विश्वासयोग्य और कामोद्दीपन करने वाले वचन, यदि स्वछन्दतापूर्वक एकान्त में कहे जाएं तो निश्चय ही सुनने वाले के मन को हर लेते हैं।

छंद

आवासः क्रियतां गाङ्गे पापवारिणि वारिणि।

स्तनमध्ये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि॥ ३१ ॥

अर्थः

या तो पाप ताप नाशिनी गङ्गा के किनारों पर ही रहना चाहिए, या फिर मनोहर हार पहने हुए तरुणी स्त्रियों के कुचो के मध्य में ही रहना चाहिए।

छंद - आर्या

प्रियपुरतो युवतीनां तावत्पदमातनोति हृदि मानः।

भवति न यावच्चन्दनतरुसुरभिर्निर्मलः पवनः॥ ३२ ॥

अर्थः

मानिनी कामिनियों के हृदयों में अपने प्यारों के प्रति मान तभी तक ठहरता है जब तक चन्दन के वृक्षों की सुगन्धि से पूर्ण मलयाचल का वायु नहीं चलता।

छंद – हरिणी

परिमलभृतो वाताः शाखा नवाङ्कुरकोटयोमधुरविरुतोत्कण्ठा वाचः प्रियाः पिकपक्षिणाम् ॥

विरलसुरतस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः प्रसरति मधौ रात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः ? ॥ ३३॥

अर्थः

जब सुगन्धियुक्त पवन चला करती हैं, वृक्षों की शाखाओं में नए नए अङ्कुर निकलते हैं, कोकिला मदमत्त या उत्कण्ठित होकर मधुर कलरव करती है, स्त्रियों के मुखचन्द्र पे मैथुन के परिश्रम से निकले हुए पसीनो के हलकी हलकी धारें मजा देने लगती हैं, उस वसंत की रात में, किसे काम, पीड़ित नहीं करता?

छंद - द्रुतविलम्बित

मधुरयं मधुरैरपि कोकिलाकलरवैर्मलयस्य च वायुभिः ॥

विरहिणः प्रहिणस्ति शरीरिणोविपदि हन्त सुधाऽपि विषायते ॥ ३४॥

अर्थः

ऋतुराज बसन्त, कोकिल के मधुर मधुर शब्दों और मलय पवन से बिरही स्त्री पुरुषों के प्राण नाश करता है। बड़े ही दुःख का विषय है कि प्राणियों के लिए विपदकाल में अमृत भी विष हो जाता है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

आवासः किलकिञ्चितस्य दयिताः पार्श्वे विलासालसाःकर्णे
कोकिलकामिनीकलरवः स्मेरो लतामण्डपः ॥

गोष्ठी सत्कविभिः समं कतिपयैः सेव्याः सितांशो कराः
केषाञ्चित्सुखयन्ति धन्यहृदयं चैत्रे विचित्राः क्षपाः ॥ ३५॥

अर्थः

भोग विलास से शिथिल होकर अपनी प्यारी के पास आराम करना, कोकीलाओं के मधुर शब्द सुनना, प्रफुल्लित लतामण्डप के नीचे टहलना, सुन्दर कवियों से बातचीत करना और चन्द्रमा के शीतल चांदनी की बहार देखना- ऐसी सामग्री से चैत्र मॉस की विचित्र रात्रियाँ किसी किसी ही भाग्यवान की नेत्र और हृदयों की सुखी करती हैं।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

पान्थस्त्रीविरहाग्नितीव्रतरतामातन्वती मञ्जरीमाकन्देषु
पिकाङ्गनाभिरधुना सोत्कण्ठमालोक्यते ॥

अप्येते नवपाटलीपरिमलप्राग्भारपाटच्चरावान्ति
क्लान्तिवितानतानवकृतः श्रीखण्डशैलानिलाः ॥ ३६ ॥

अर्थ:

इस बसन्त में जगह जगह बटोहियों को विरह व्याकुल स्त्रियों की विरहाग्नि में आहुति का काम करने वाली आम की मञ्जरियाँ खिल रही हैं। कोकिला उन्हें बड़ी अभिलाषा या उत्कण्ठा से देख रही है। नए पलाश की फूलों की सुगन्ध को चुरानेवाले और रह की थकन को मिटानेवाली मलय वायु चल रही हैं।

छंद - आर्या

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते ।
मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥ ३७ ॥

अर्थ:

आम की, भौरों की, केसर की गहरी सुगन्ध से दशों दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं, मधुर मकरन्द को पी पी कर भौरे उन्मत्त हो रहे हैं- ऐसे ऋतुराज वसन्त में किसके मन में कामवासना उदय नहीं होता ।

छंद - वसन्ततिलका

अच्छाच्छचन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्योधारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च ॥ मन्दो मरुत्सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठंग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्धयन्ति ॥ ३८ ॥

अर्थः

अत्यन्त सफ़ेद चन्दन जिनके हाथो में लग रहा है, ऐसी मृगनयनी सुंदरियाँ, फ़व्वारेदार घर, फूल, चाँदनी, मन्दी हवा और महल की साफ़ छत- ये सब गर्मी के मौसम में, मद और मदन, दोनों ही को बढ़ाते हैं।

छंद - शिखरिणी

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणाः परागः कासारो मलयजरसः सीधु विशदम् ॥

शुचिः सौधोत्सङ्गः प्रतनु वसनं पङ्कजदृशोनिदाधार्ता ह्येतत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः ॥ ३९ ॥

अर्थः

मनोहर सुगन्धित माला, पंखे की हवा, चन्द्रमा की किरणे, फूलों का पराग, सरोवर, चन्दन की रज, उत्तम मदिरा, महल की उत्तम छत, महीन वस्त्र और कमलनयनी सुंदरी - इन सब उत्तमोत्तम पदार्थों का, गर्मी के तेजी से विकल हुए, कोई कोई भाग्यवान पुरुष ही आनन्द ले सकते हैं।

छंद - शिखरिणी

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मिः शशधरः प्रियावक्त्राम्भोजं मलयजरसश्चातिसुरभिः ॥
स्रजो हृद्यामोदास्तदिदमखिलं रागिणि जनेकरोत्यन्तःक्षोभं न तु विषयसंसर्गविमुखे ॥ ४० ॥

अर्थ:

लिपा पुता साफ़ महल, किरणों वाला चन्द्रमा, प्यारी का मुखकमल, चन्दन की रज और मनोहारी फूलमाला - ये सब चीजें कामी पुरुषों के मन को अत्यन्त क्षोभित करती हैं, परन्तु विषय वासना से विमुख पुरुषों के हृदयों में किसी प्रकार का क्षोभ नहीं करती।

छंद - दोधक

तरुणीवैषोहीपितकामा विकसितजातीपुष्पसुगन्धिः।
उन्नतपीनपयोधरभारा प्रावृट् कुरुते कस्य न हर्षम् ? ॥ ४१ ॥

अर्थ:

कामदेव का उदय करनेवाली, प्रफुल्लित मालती की लता वाली, उत्तम सुगन्ध धारण करने वाली, उन्नत पीन पयोधरा वर्षा ऋतु, तरुणी स्त्री की तरह किसके मन में हर्ष उत्पन्न नहीं करती ?

छंद - मालिनी

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्योनवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः
॥ शिखिकुलकलकेकारावरम्या वनान्ताः सुखिनमसुखिनं वा
सर्वमुत्कण्ठयन्ति ॥ ४२ ॥

अर्थः

मेघों आच्छादित आकाश, नवीन नवीन अंकुरों से पूर्ण पृथ्वी, नवीन कुटज और कदम्ब के फूलों से सुगन्धित वायु और मोरों के झुण्ड की मनोहर वाणी से रमणीय वनप्रान्त – वर्षा में सुखी और दुःखी, दोनों तरह को उत्कण्ठित करते हैं।

छंद - आर्या

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि नर्तितमयूराः ।

क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टिं पथिकः क्व यापयतु ? ॥ ४३ ॥

अर्थः

सिर के ऊपर घनघोर घटाएं छा रही हैं, दाहिने बाएं, दोनों तरफ के पहाड़ों पर मोर नाच रहे हैं; पैरों जमीन नवीन अँकुरों से हरी हो रही है ऐसे समय में जबकि चारों और कामोद्दीपन करनेवाले सामान नजर आते हैं, विरह-व्याकुल पथिक को कैसे सन्तोष हो सकता है ?

छंद - शिखरिणी

इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकितरोः स्फुरद्गन्धः
प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः ॥

इतः केकीक्रिडाकलकलरवः पक्ष्मलदृशांकथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः
सम्भृतरसाः ? ॥ ४४ ॥

अर्थः

एक ओर चपला का चमचम चमकना, दूसरी ओर केतकी के फूलों की मनोहर सुंगन्ध; एक ओर मेघ की गर्जन और दूसरी ओर मोरों का शोर- ये सब जहाँ एकत्र हैं, वहां सुनयनी विरह-व्याकुला स्त्रियां अपने रास पूर्ण विरह के दिनों को कैसे बिताएंगी ?

छंद - शिखरिणी

असूचीसंचारे तमसि नभसि प्रौढजलदध्वनिप्राये तस्मिन् पतति दृशदां
नीरनिचये ॥

इदं सौदामिन्याः कनककमनीयं विलसितंमुदं च ग्लानिं च प्रथयति
पथिष्वेव सुदृशाम् ॥ ४५ ॥

अर्थः

सावन की घोर अँधेरी रात में, जबकि हाथ को हाथ नहीं सूझता, मेघों की भयंकर गर्जना, पत्थर सहित जल की वृष्टि होना और सोने के

समान बिजली का चमकना सुन्दरी सुनयनाओं के लिए, राह में ही, सुख और दुःख दोनों का कारण होता है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

आसारेषु न हर्म्यतः प्रिततमैर्यातुं यदा
शक्यतेशीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिङ्ग्यते ॥
जाताः शीकरशीतलाश्च मरुतश्चात्यन्तखेदच्छिदोधन्यानां बत दुर्सिनं
सुदिनतां याति प्रियासङ्गमे ॥ ४६ ॥

अर्थः

वर्षा की झड़ी में प्रियतम घर से बाहर नहीं निकल सकते। जाड़े के मारे विशाल नेत्रों वाली प्राणप्यारी स्त्रियां उनको आलिंगन करती हैं और शीतल जल के कणो सहित वायु, मैथुन के अंत में होने वाले श्रम को मिटा देते हैं- इस तरह वर्ष के दुर्दिन भी भाग्यवानों के लिए सुदिन हो जाते हैं।

छंद - स्रग्धरा

अर्ध नीत्वा निशायाः सरभससुरतायासखिन्नश्लथाङ्गः
प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते ॥
सम्भोगाक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलताऽऽवर्जितं
कर्करीतोज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारं न पिबति सलिलं शारदं मंदभाग्यः ॥
४७ ॥

अर्थ:

आधी रात बीतने पर, जल्दी जल्दी मैथुन करके थक जाने पर और उसी की वजह से असह्य प्यास लगने पर, मदिरा के नशे की हालत में, महल की स्वच्छ छत पर बैठा हुआ पुरुष यदि मैथुन के कारण थकी हुई भुजाओं वाली प्यारी के हाथों से लाई हुई झारी का निर्मल जल, शरद की चांदनी में नही पीता तो वह निश्चय ही अभागा है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवासोभृतः
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषः खिन्ना विचित्रै रतैः ॥
पीनोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा गृह्याभ्यन्तरेताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा
धन्याः सुखं शेरते ॥ ४८ ॥

अर्थः

हेमन्त ऋतु में जो दूध, दही और घी खाते हैं; मंजीठ के रंग में रंगे हुए वस्त्र पहनते हैं; शरीर में केसर का गाढ़ा गाढ़ा लेप करते हैं; आसान-भेद से अनेक प्रकार मैथुन करके सुखी होते हैं; पुष्ट जांघो और सघन कठोर कुचों वाली स्त्रियों का गाढ़ आलिंगन करते हैं और मसालेदार पान का बीड़ा चबाते हुए मकान के भीतरी कमरे में सुख से सोते हैं, वे निश्चय ही भाग्यवान हैं।

छंद - स्रग्धरा

चुम्बन्तो गण्डभित्तीरलकवति मुखे सीत्कृतान्यादधानावक्षः
सूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ॥
ऊरूनाकम्पयन्तःपृथुजघनतटात्स्रंसयन्तोंऽ शुकानिव्यक्तं कान्ताजनानां
विटचरितकृतः शैशिरा वान्ति वाताः ॥ ४९ ॥

अर्थः

स्त्रियों के केशयुक्त बालों को चूमता हुआ, जोर के जाड़े के मारे उनके मुँह से "सी-सी" करता हुआ, आंगी रहित खुले हुए कुचों को रोमांचित करता हुआ, पेडुओं को कम्पाता हुआ और पुष्ट जांघो से कपडा हटाता हुआ, शिशिर का जार पुरुषों का सा आचरण करता हुआ बह रहा है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

केशानाकुलयन् दृशो मुकुलयन् वासो बलादाक्षिपन्आतन्वन्
पुलकोद्गमं प्रकटयन्नावेगकम्पं गतैः ॥

वारंवार मुदारसीत्कृतकृतो दन्तच्छदान्पीडयन्प्रायः शैशिर एष सम्प्रति
मरुत्कान्तासु कान्तायते ॥ ५० ॥

अर्थः

बालों को बिखेरता, आँखों को कुछ कुछ मूँदता, साड़ी को जोर से उडाता, देह को रोमांचित करता, शरीर में सनसनी पैदा करता, कांपते हुए शरीर को आलिंगन करता, बारंबार सी सी कराकर होठों को चूमता हुआ, शिशिर का वायु, पतियों का सा आचरण करता है।

छंद - शिखरिणी

असाराः सन्त्वेते विरसविरसाश्चैव विषयाजुगुप्सन्तां यद्वा ननु
सकलदोषास्पदमिति ॥

तथाप्यन्तस्तत्त्वे प्रणिहितधियामप्यनबलः तदीयो नाख्येयः स्फुरति
हृदये कोऽपि महिमा ॥ ५१ ॥

अर्थः

सांसारिक विषय भोग असार, विरति में विघ्न करने वाले और सब दोषों की खान है" इत्यादि निन्दा लोग भले ही करें फिर भी इनकी

महिमा अपार है और इनके शक्तिशाली होने में कोई संदेह नहीं क्योंकि ब्रह्मविचार में लीं तत्ववेत्ताओं के हृदय में भी ये प्रकाशित होते हैं।

छंद - शिखरिणी

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामाप्तगुरवोविशित्रालापानां वयमपि कवीनामनुचराः ॥

तथाप्येतद् ब्रूमो न हि परहितात्पुण्यमधिकंन चास्मिन्संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥ ५२ ॥

अर्थ:

आप वेदान्तवेत्ताओं के माननीय गुरु हो और हम उत्तम काव्य रचयिता कवियों के सेवक हैं; तो भी हमें यह बात कहनी ही पड़ती है कि परोपकार से बढ़कर पुण्य नहीं है और कमलनयनी सुन्दर स्त्रियों से बढ़कर सुन्दर पदार्थ नहीं है।

छंद - मालिनी

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापैः द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ॥

अभिनवमदलीलालालसं सुंदरीणांस्तनभरपरिखिन्नं यौवनं व वनं वा ॥ ५३ ॥

अर्थः

युक्तिशून्य वृथा प्रलाप से क्या प्रयोजन? इस जगत में दो ही वस्तुएं सेवन करने योग्य हैं - नवीन मदान्ध लीलाभिलाषिणी और स्तनभार से खिन्न सुंदरियों का यौवन।

छंद - मालिनी

वचसि भवति सङ्गत्यागमुद्दिश्य वार्ताश्रुतिमुखमुखराणां केवलं पण्डितानाम् ॥

जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापंकुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ? ॥ ५६ ॥

अर्थः

शास्त्रवक्ता पण्डितों का स्त्री-त्याग का उपदेश केवल कथनमात्र ही है। लाल रत्न-जड़ित करधनीवाली कमलनयनी स्त्रियों की मनोहर जंघाओं को कौन त्याग सकता है।

छंद - आर्या

स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीकपण्डितो युवतिम् ।

यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गस्तस्यापि फलं तथाप्सरसः ॥ ५७ ॥

अर्थः

जो विद्वान् युवतियों की निंदा करता है, वह निश्चय ही झूठा पण्डित है। उसने पहले आप धोखा खाया है, अब दूसरों को धोखा देता है, क्योंकि अनेक प्रकार की तपस्याओं का फल स्वर्ग है और स्वर्ग का फल अप्सरा भोग है।

छंद

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्यकंदर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥ ५८ ॥

अर्थः

इस पृथ्वी पर मतवाले हाथी का मस्तक विदारनेवाले शूर अनेक हैं, प्रचण्ड मृगराज सिंह के मारनेवाले भी कितने ही मिल सकते हैं परंतु बलवानों के सामने हम हठ करके कहते हैं कि कामदेव के मद का मर्दन करने वाले पुरुष विरले ही होंगे।

छंद - स्रग्धरा

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति च नरस्तावदेवीन्द्रियाणांलज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ॥

भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एतेयावल्लीलावतीनां हृदि न धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति ॥ ५९॥

अर्थः

पुरुष सत्मार्ग में तभी तक रह सकता है, इन्द्रियों को तभी तक वश में रख सकता है, लज्जा को उसी समय तक धारण कर सकता है, नम्रता का अवलम्बन तभी तक कर सकता है, जब तक कि लीलावती स्त्रियों के भौंह रुपी धनुष से कानों तक खींचे गए, श्याम वरौनि रुपी पङ्ख धारण किये, धीरज को छुड़ाने वाले नयन रुपी बाण हृदय

में नहीं लगते।

छंद - अनुष्टुभ्

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता।

यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हन्त पञ्चेषुपावकः ॥ ६१ ॥

अर्थ:

बड़ाई, पण्डिताई, कुलीनता और विवेक मनुष्य के हृदय में तभी तक रह सकते हैं, जब तक शरीर में कामाग्नि प्रज्वलित नहीं होती।

छंद - मन्दाक्रान्ता

शास्त्रज्ञोऽपि प्रथितविनयोऽप्यात्मबोधोऽपि बाढं संसारेऽस्मिन्भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् ॥

येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्धाटयन्ती वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव ॥ ६२ ॥

अर्थ:

शास्त्रज्ञ, विनयी और आत्मज्ञानियों में कोई विरला ही ऐसा होगा, जो सद्गति का पात्र हो; क्योंकि यहाँ वामलोचना स्त्रियों की बाँकी भ्रू-लता-रुपी कुञ्जी उनके लिए नरकद्वार का ताला खोले रहती है।

छंद - शिखरिणी

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलोव्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ॥

क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालार्पितगलः शुनीमन्वेति श्वा ! हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥ ६३ ॥

अर्थः

काना, लंगड़ा, कनकटा और दुमकटा कुत्ता, जिसके शरीर में अनेक घाव हो रहे हैं, उनसे पीब और राध झरते हैं, दुर्गन्ध का ठिकाना नहीं है, घावों में हजारों कीड़े पड़े हैं, जो भूख से व्याकुल हो रहा है और जिसके गले में हांडी का घेरा पड़ा हुआ है, कामांध होकर कुतिया के पीछे पीछे दौड़ता है। है! कामदेव बड़ा ही निर्दयी है,
जो मरे को भी मारता है।

विवेचना

कुत्ता इतने क्लेशो से व्याप्त होने पर भी, शरीर में दम न होने पर भी और क्षुधा से व्याकुल होने पर भी, कामांध होकर, कुतिया के पीछे दौड़ता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि, कामदेव बड़ा ही निर्दयी है; क्योंकि वह मुसीबत से मरते हुओं पर भी अपने सत्यानाशी बाण छोड़ने में संकोच नहीं करता। जो कामदेव ऐसे दुर्बलों का यह हाल करता है, वह मावा-मलाई घी-दूध और रबड़ी-पड़े खाने वाले सण्ड-मुसण्डों का तो और भी बुरा हाल करता होगा। धूर्त मनुष्यों और धनाढ्य, जो नित्य

माल पर माल उड़ाते हैं, क्या कामबाणों से रक्षित रहने में समर्थ हो सकते होंगे? कदापि नहीं। जो ऐसा कहते हैं, वे महापापी और मिथ्यावादी हैं। वे एक पाप तो जारकर्म का करते हैं और दूसरा मिथ्याभाषण का।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य परमां सर्वार्थसम्पत्करीं
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः ॥
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचित्पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥ ६४ ॥

अर्थः

जो मूर्ख सब अर्थ और सम्पदों की देने वाली, कामदेव की मुद्रा रुपी स्त्रियों को त्यागकर, स्वर्ग प्रभृति की इच्छा से, घर छोड़ कर निकल गए हैं, उन्हें विरक्त भेष में न समझना चाहिए। उन्हें कामदेव ने अनेक प्रकार के कठोर दण्ड दिए हैं। इसी से कोई नंगा फिरता है, कोई सर मुंडाए घूमता है, किसी ने पञ्चकेशी रखाई है, किसी ने जटा रखाई है और कोई हाथ में ठीकरा लेकर भीख मांगता फिरता है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनाः तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं
सुललितं दृष्टैव मोहं गताः ॥ शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते
मानवाः तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ॥ ६५ ॥

अर्थ:

विश्वामित्र, पराशर, मरीचि और श्रृंगि प्रभृति बड़े बड़े विद्वान ऋषि मुनि, जो वायु जल और पत्ते खाकर गुजरा करते थे, स्त्री के मुख-कमल को देखकर मोहित हो गए; तब जो मनुष्य अन्न, घी, दूध, दही प्रभृति नाना प्रकार के व्यञ्जन खाते और पीते हैं, कैसे अपनी इन्द्रियों वश में रख सकते हैं? यदि वे अपनी इन्द्रियों को वश कर सकें, तो विंध्याचल पर्वत भी समुद्र में तैर सके।

छंद - स्रग्धरा

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती
पण्डितानांतत्त्वज्ञानामृताम्भःप्लवलुलितधियां यातु कालः कथञ्चित् ॥
नोचेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोगसम्भोगिनीनां
स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलोलोद्यतानाम्

॥ ६६ ॥

अर्थः

अगर इस संसार में, पूर्ण चन्द्रमा की सी कांती वाली, कमल की सी आँखोंवाली, कमर में लटकती हुई करधनी पहनने वाली, स्तंभार से झुकी हुई कमर वाली युवती स्त्रियां न होती, तो निर्मल बुद्धि मनुष्य, राजाओं के द्वार की सेवाओं में, अनेक कष्ट उठाकर अधीर चित्त क्यों होते?

छंद - शार्दूलविक्रीडित

सिद्धाध्यासितकन्दरे हरवृषस्कन्धावरुग्णद्रुमेगङ्गाधौतशिलातले
हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि ॥
कः कुर्वीत शिरः प्रमाणमलिनं म्लानं मनस्वी
जनोयद्वित्रस्तरकुरङ्गशावनयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः ॥ ६७ ॥

अर्थः

यदि त्रस्ता मृगशावकनयनी कामास्त्ररूपा कामिनी इस जगत में न होती तो सिद्ध- महात्माओं की गुफाएं, महादेव के वाहन नन्दीश्वर, बैल के कन्धा रगड़ने के वृक्ष और गङ्गाजल से पवित्र हुई शिलाओं वाले हिमालय के स्थान को छोड़ कौन मनस्वी बुद्धिमान पुरुष लोगो के सामने जा, माथा झुका, उन्हें प्रणाम करके अपने मान को मलीन करता?

छंद - अनुष्टुभ्

संसारोदधिनिस्तार पदवी न दवीयसी। अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणा

॥ ६८ ॥

अर्थः

हे संसार! यदि तुझमें मद से मतवाले नेत्रों वाली दुस्तर स्त्रियां नहीं होती, तो तेरे परली पर जाना कुछ कठिन न होता।

छंद - स्रग्धरा

राजंस्तृष्णाम्बुराशेर्न हि जगति गतः कश्चिदेवावसानंको वार्थोऽर्थे प्रभूतैः स्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे ॥

गच्छामः सद्म तावद्विकसितकुमुदेन्दीवरालोकिनीनांयावच्चाक्रम्य रूपं झटिनि न जरया लुप्यते प्रेयसीनाम् ॥ ६९ ॥

अर्थः

हे महाराज ! इस तृष्णा रूपी समुद्र के पार कोई न जा सका। अतीव प्यारी यौवनावस्था चले जाने पर, अधिक धन सञ्चय से क्या लाभ होगा? हम शीघ्र ही अपने घर क्यों न चले जाएं, क्योंकि, कहीं ऐसा न हो, विकसित कुमुद और कमल के समान नेत्रोंवाली हमारी प्यारियों के रूप को वृद्धावस्था घुला घुलकर बिगाड़ डाले।

छंद - स्रग्धरा

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःखसम्प्राप्तिहेतुः मोहस्योत्पत्तिबीजं जलधरपटलं ज्ञानताराधिपस्य ॥

कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टदोषप्रबन्धंलोकेऽस्मिन्न ह्यनर्थव्रजकुलभवनं यौवनादन्यदस्ति ॥ ७० ॥

अर्थ:

अनुराग के घर, नरक के नाना प्रकार के दुःखों हेतु, मोह की उत्पत्ति के बीज, ज्ञानरुपी चन्द्रमा के ढकने को मेघ समूह, कामदेव के मुख्य मित्र, नाना दोषों को स्पष्ट प्रकटाने वाले और अपने कुल को दहन करनेवाले यौवन के सिवा, इस लोक में दूसरा कोई अनर्थ नहीं है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

श्रृंगारद्रुमनीरदे प्रसृमरक्रीडारस स्रोतसिप्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरतामुक्ताफलोदन्वति ॥

तन्वीनेत्रचकोरपार्वणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौधन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे यौवने ॥ ७१ ॥

अर्थ:

श्रृंगाररुपी वृक्षों को सींचने वाले, क्रीड़ारस को विस्तार से प्रवाहित करने वाले, कामदेव के प्यारे मित्र, चातुर्यरूपी मोतियों के समुद्र,

कामिनियों के नेत्र रुपी चकोरों को पूर्णचन्द्र, सौभाग्य-लक्ष्मी के ख़ज़ाने यौवन को पाकर, जो विकारों के वशीभूत नहीं होते, वे निश्चय ही भाग्यवान हैं।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणीभरेत्युत्सुकः पीनोत्तुङ्ग पयोधरेति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूरिति ॥

दृष्टा माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति विद्वानपिप्रत्यक्षाशुचिभस्त्रिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितम् ! ॥ ७१ ॥

अर्थः

अहो! मोह की कैसी विचित्र महिमा है कि, बड़े बड़े विद्वान् पण्डित भी प्रत्यक्ष ही अपवित्रता की पुतली - स्त्री को देखकर मोहित हो हैं, उसकी स्तुति करते हैं, आनंदित होते हैं, रमन करते हैं और उत्कण्ठित होकर हे कमलनयनी! हे विशाल नितम्बों वाली ! हे विशालाक्षी! हे कल्याणी! हे शुभे! हे पुष्टपयोधरवाली! हे सुन्दर भौंहोंवाली प्रभृति नाना प्रकार के सम्बोधनों से उसे सम्बोधित करते हैं।

छंद - अनुष्टुभ

स्मृता भवति तापाय दृष्ट्रा चोन्मादवर्धिनी।

स्पृष्टा भवति मोहाय ! सा नाम दयिता कथम् ? ॥ ७३॥

अर्थः

जो स्त्री स्मरणमात्र करने से सन्ताप कराती है, देखते ही उन्माद बढाती है और छूते ही मोह उत्पन्न करती है, उसे न जाने क्यों प्राण-प्यारी कहते हैं?

छंद - अनुष्टुभ्

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा।

चक्षुः पथादतीता तु विषादप्यतिरिच्यते ॥ ७४ ॥

अर्थः

स्त्री जब तक आँखों के सामने रहती है, तब तक अमृत सी मालूम होती है परन्तु आँखों की ओट होते ही, विष से भी अधिक दुःखदायिनी हो जाती है।

छंद - अनुष्टुभ्

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।

सैवामृतरुता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥ ७५ ॥

अर्थ:

सुंदरी नितम्बिनी को छोड़कर न और अमृत है और न विष। स्त्री अगर अपने प्यारे को चाहे तो अमृत लता है और जब वह उसे न चाहे तो निश्चय ही विष की मञ्जरी है।

छंद - स्रग्धरा

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानांदोषाणां संविधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ॥ स्वर्गद्वारस्य विघ्नौ नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डंस्त्रीयन्त्रं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिलोकस्य पाशः ॥ ७६ ॥

अर्थ:

संदेहों का भंवर, अविनय का घर, साहसों का नगर, पाप दोषों का खजाना, सैकड़ों तरह के कपट और अविश्वास का क्षेत्र, स्वर्ग-द्वार का विघ्न, नरक नगर का द्वार, साड़ी मायाओं का पिटारा, अमृत रूप में विष और पुरुषों को मोह जाल में फ़साने वाला स्त्री-यंत्र न जाने किसने बनाया?

छंद - शार्दूलविक्रीडि

तनो सत्येन मृगाङ्क एष वदनीभूतो न चेन्दीवर द्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैरप्यङ्गयष्टिः कृता ॥

किं त्वेवं कविभिः प्रतारितमनास्तत्त्वं विजानन्नपित्वङ्गांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मन्दो जनः सेवते ॥ ७७ ॥

अर्थः

अगर हमसे पक्षपात रहित सच्ची बात पूछी जाय, तो हमको कहना होगा कि चन्द्रमा स्त्री का मुख नहीं, कमल उसके नेत्र नहीं; उसका भी शरीर और सब प्राणियों की तरह हाड़, काम और मांस का है। इस बात को जानकर भी, कवियों की मिथ्या उक्तियों के भुलावे में पड़कर, हमलोग स्त्रियों पर आसक्त रहते हैं और उन्हें सेवन करते हैं।

छंद - उपजाति

लीलावतीनां सहजा विलासास्त एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति ॥

रागो नलिन्या हि निसर्गसिद्धस्तत्र भ्रमत्येव वृथा षडङ्घिः ॥ ७८ ॥

अर्थः

जिस तरह मूर्ख भौरा कमलिनी की स्वाभाविक ललाई को देखकर उसपर मुग्ध हो जाता है और उसके चारों ओर गूंजता फिरता है; उसी

तरह मूढ़ पुरुष लीलावती स्त्रियों के स्वाभाविक हाव्-भाव और नाज-नखरों को देखकर उनपर मुग्ध हो जाते हैं।

छंद - शिखरिणी

यदेतत्पूर्णेन्दुद्युतिहरमुदाराकृतिवरंमुखाब्जं तन्वङ्ग्याः किल वसति तत्राधरमधु ॥
इदं तत्किम्पाकद्रुमफलमिवातीव विरसं व्यतीतेऽस्मिन् काले विषमिव भविष्यत्यसुखदम् ॥ ७९ ॥

अर्थः

स्त्री का पूर्णिमा के चन्द्रमा की छवि को हरने वाला कमलमुख, जिसमें अधरामृत रहता है, मन्दार के फल की तरह अज्ञात या यौवनावस्था तक ही अच्छा मालूम होता है; समय बीतने यानि बुढ़ापा आने पर वही कमल मुख अनार के पके और सड़े फल की तरह विष सा हो जाता है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

उन्मीलत्त्रिवलितरङ्गनिलया प्रोत्तुङ्ग पीनस्तन-
द्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाकमिथुना वक्त्राम्बुजोद्भासिनी ॥ कान्ताकारधरा
नदीयमभितः क्रूराशया नेष्यतेसंसारार्णवमज्जनं यदि तदा दूरेण
सन्त्यज्यताम् ॥ ८० ॥

अर्थ:

रूप ही जल है, चञ्चल नयन मछलियां हैं, नाभि भंवर है और सर के बाल सर्प हैं - यह तरुण स्त्री रुपी नदी, दुस्तर नदी है। इस नदी में श्रृंगार-शास्त्र प्रवीण सज्जन स्नान करते हैं।

छंद - अनुष्टुभ्

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमम् ।
हृद्गतं चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ? ॥ ८१ ॥

अर्थ:

स्त्रियां बात तो किसी से करती हैं, देखतीं किसी और को हैं, दिल में चाहती किसी और को हैं। विलासवती स्त्रियों का प्यारा कौन है?

छंद - वैतालीय

मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदि हालाहलमेव केवलम् । अत एव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ॥ ८२ ॥

अर्थ:

स्त्रियों की बातों में अमृत और हृदय में हलाहल विष होता है; इसीलिए पुरुष उनका अधरामृत पान और उनकी छातियों का मर्दन करते हैं।

छंद

दूरादस्मात्कटाक्षविषानलात्प्रकृतिकुटिलाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः॥

इतरफणिना दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमौषधे श्चतुरवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ॥ ८३ ॥

अर्थ:

हे मित्र ! सहज ही क्रूर, विलास रुपी फण वाले और कटाक्ष रुपी विषाग्नि धारण करने वाले स्त्री-रुपी सर्प से दूर भाग; क्योंकि और सर्पों का काटा हुआ तो मन्त्र और औषधियों से अच्छा हो सकता है; पर चतुर स्त्री रुपी सर्प के डसे हुए को झाड़-फूंक वाले गारुड़ी भी छोड़ भागते हैं।

छंद - वसंततिलका

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेणस्त्रीसंज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ ॥
येनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्य मत्स्याद्विकृष्य स पचत्यनुरागवह्नौ ॥ ८४
॥

अर्थ:

इस संसार रुपी समुद्र में कामदेव रुपी धीमर ने स्त्री रुपी जाल फैला रखा है। इस जाल में वह अधरमिष-लोभी पुरुष-रुपी मछलियों को, शीघ्रता से, खींच खींच कर, अनुराग-रुपी अग्नि में पकता है।

छंद - अनुष्टुभ्

कामिनीकायकान्तारे स्तनपर्वतदुर्गमे ।

मा सञ्चर मनःपान्थ! तत्रास्ते स्मरतस्करः ॥ ८५ ॥

अर्थ:

हे मन-रुपी पथिक ! कुच रुपी पर्वतों में होकर, दुर्गम कामिनी के शरीर रुपी वन में न जाना, क्योंकि वहां कामदेव-रुपी तस्कर रहता है।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेजस्विना भोगिनानीलाब्जद्युतिनाऽहिना
वरमहं दष्टो, न तच्चक्षुषा॥

दष्टे सन्ति चिकित्सका दिशि-दिशि प्रायेण
धर्मार्थिनोमुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य न हि मे वैद्यो न चाप्यौषधम्॥ ८६

अर्थः

बड़े लम्बे, तेज चलने वाले, टेढ़ी चालवाले, भयंकर फनधारी काले से काटा जाना भला; पर अत्यन्त विशाल, चञ्चल, टेढ़ी चालवाले, तेजस्वी और नीलकमल की कान्तिवाले कामिनी के नेत्रों से डसा जाना भला नहीं; क्योंकि सर्प के काटे हुए को बचाने वाले धर्मार्थी मनुष्य सर्वत्र मिलते हैं; पर सुनयना की दृष्टि से काटे हुए की न कोई दवा है न वैद्य।

छंद - मालिनी

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष
स्तनानाम्।

इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणः स्वहितकरणदक्षैः
पञ्चभिर्वञ्चितोऽसि॥८७॥

अर्थ:

यह कैसा मधुर गाना है, यह कैसा उत्तम नाच है, इस पदार्थ का स्वाद कैसा अच्छा है, यह सुगन्ध कैसी मनोहर है, इन स्तनों को छूने से कैसा मजा आता है! हे मनुष्य ! तू इन पांच विषयों में भ्रमता हु - परमार्थ नाशिनी नरकादि की साधनभूत पांचों इन्द्रियों से ठगा गया है।

छंद - शिखरिणी

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयोन चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः ॥

भ्रमावेशादङ्गे कमपि विदधद्भङ्गमसकृत् स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं धूर्णयति च ॥ ८८ ॥

अर्थ:

जब कामदेव रुपी अकस्मार- मृगी- रोग का, भ्रम के आवेश से दौरा होता है, तब शरीर में असह्य वेदना होती है, शरीर दुखता है, मन घूमता है और आँखें चक्कर खाती हैं। यह रोग मन्त्र, औषधि, नाना प्रकार के शान्ति कर्म और पूजा पाठ, किसी से भी नाश नहीं होता।

छंद - शार्दूलविक्रीडित

जान्त्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय चग्रामीणाय च
दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च ॥

यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवाकाङ्गयापण्यस्त्रीषु
विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येत कः ? ॥८९ ॥

अर्थः

कुरूप, बुढ़ापे से शिथिल, गंवार, नीच और गलित कुष्ठी को, थोड़े से धन की आशा से, जो अपना सुन्दर शरीर सौंप देती है और जो विवेक रुपी कल्पलता के लिए छुरी के सामान है, उस वैश्या से कौन विद्वान् रमण करना चाहेगा ?

छंद - अनुष्टुभ्

वेश्याऽसौ मदनज्वाला रूपेन्धनविवर्धिता ।

कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ ९० ॥

अर्थः

यह वैश्या सुंदरता रुपी इन्धन से जलती हुई प्रचंड कामाग्नि है। कामी पुरुष इस अग्नि में अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं।

छंद - आर्या

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ।
चारभटचौरचेटकनटविटनिष्ठीवनशरावम् ? ॥ ९१ ॥

अर्थ:

वैश्या का अधर-पल्लव (ओंठ) यद्यपि अतीव मनोहर है; किन्तु वह जासूस, सिपाही, चोर, नट, दास, नीच और जारों के थूकने का ठीकरा है। इसलिए कौन कुलीन पुरुष उसे चूमना चाहेगा।

छंद - वसन्ततिलका

धन्यास्त एव तरलायतलोचनानांतारुण्यदर्पघनपीनपयोधराणाम् ॥
क्षामोदरोपरिलसत्त्रिवलीलतानांदृष्ट्वाऽऽकृतिं विकृतिमेति मनो न येषाम्

॥ ९२ ॥

अर्थ:

चञ्चल और बड़ी बड़ी आँखों वाली, यौवन के अभिमान से पूर्ण, दृढ़ और पुष्ट स्तनों वाली अवं क्षीण उदरभाग पर त्रिवली से सुशोभित युवती स्त्रियों की सूरत देखकर, जिन पुरुषों के मन में विकार उत्पन्न नहीं होता, वे पुरुष धन्य हैं।

छंद - मंदाक्रान्ता

बाले लीलामुकुलितममी सुंदरा दृष्टिपाताः किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते ॥

सम्प्रत्यन्त्ये वयसि विरतं बाल्यमास्था वनान्ते क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः ॥ ९३ ॥

अर्थः

हे बाले! लीला से जरा जरा खुले हुए नेत्रों से सुन्दर कटाक्ष हम पर क्यों फेंकती है? विश्राम ले! विश्राम ले! हमारे लिए तेरा यह श्रम व्यर्थ है। क्योंकि अब हम पहले जैसे नहीं रहे; अब हमारा छछोरपन चला गया, अज्ञान दूर हो गया। हम बन में रहते हैं और जगज्जाल को तिनके के सामान समझते हैं।

छंद - शिखरिणी

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ? ॥

गतो मोहोऽस्माकं स्मरशबरबाणव्यतिकर-ज्वलज्ज्वालाः शांतास्तदपि न वराकी विरमति ॥ ९४ ॥

अर्थः

इस बाला का क्या मतलब है, जो यह अपने कमल-दल की शोभा को तिरस्कार करने वाले नेत्रों को मेरी ओर चलाती है? मेरा अज्ञान नाश हो गया और कामदेव रुपी भील के बाणों से उत्पन्न हुई अग्नि भी शान्त हो गई, तथापि यह मूर्ख बाला विश्राम नहीं लेती !

छंद

शुभ्रं सद्य सविभ्रमा युवतयः श्वेतातपत्रोज्ज्वला लक्ष्मीर् इत्य् अनुभूयते स्थिरम् इव स्फीते शुभे कर्मणि ।

विच्छिन्ने नितराम् अनङ्ग कलह-क्रीडा-त्रुटत् तन्तुकं मुक्ता-जालम् इव प्रयाति झटिति भ्रश्यद् दिशो दृश्यताम् ॥ ९५ ॥

अर्थः

जब तक मनुष्य के पूर्वजन्म के शुभ कर्मों का प्रभाव रहता है, तब तक उज्जवल भवन, हाव्-भाव युक्त सुंदरी नारियां और सफ़ेद छत्र चॅवर प्रभृति से शोभायमान लक्ष्मी - ये सब स्थिर भाव से भोगने में आते हैं; किन्तु पूर्वजन्म के पुण्यों का क्षय होते ही, ये सब सुखैश्वर्य के समान - कामदेव की क्रीड़ा के कलह में टूटे हुए हार के मोतियों के समान शीघ्र ही जहाँ तहाँ लुप्त हो जाते हैं।

छंद - शिखरिणी

यदा योगाभ्यासव्यसनवशयोरात्ममनसो-रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमिनस्तस्य किमु तैः ॥

प्रियाणामालापैरधरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः सनिःश्वासामोदैः सकुचकलशाश्लेषसुरतैः ? ॥ ९६ ॥

अर्थः

जो अपने मन को वश में करके, आत्मा को सदा योगाभ्यास-साधन में लगाए रहना ही पसन्द करते हैं - उन्हें प्यारी प्यारी स्त्रियों की बातचीत, अधरामृत, श्वासों की सुगन्धि सहित मुखचन्द्र और कुचकलशों को हृदय से लगाकर काम-क्रीड़ा से क्या मतलब?

छंद - अनुष्टुभ्

अजितात्मसु सम्बद्धः समाधिकृतचापलः ।

भुजङ्गकुटिलः स्तब्धो भ्रूविक्षेपः खलायते ॥ ९७ ॥

अर्थः

अजितेन्द्रिय मनुष्यों से सम्बन्ध रखनेवाला, चित्त की एकाग्रता या समाधि में अतीव चञ्चलता करनेवाला, सर्प के समान कुटिल और स्तब्ध स्त्रियों का भ्रूक्षेप या कटाक्ष खल के समान आचरण करता है।

छंद - वसंततिलका

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे कान्तापयोधरतटे रसखेदखिन्नः ॥
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः ॥
९८ ॥

अर्थः

जो पुरुष मैथुन के श्रम से थक कर, मतवाले हाथी के कुम्भों के समान वितीर्ण और केशर से भीगे हुए स्त्री के स्तनों पर अपनी छाती रखकर, उसके भुजा रुपी पञ्जर के बीच में पड़ा हुआ, एक क्षण भी सोकर रात बीतता है, वह धन्य है।

छंद - उपजाति

सुधामयोऽपि क्षयरोगशान्त्यै नासाग्रमुक्ताफलकच्छलेन ॥
अनङ्गसंजीवनदृष्टशक्तिर्मुखामृतं ते पिबतीव चन्द्रः ॥ ९९ ॥

अर्थः

हे प्यारी ! ये चन्द्रमा अमृतमय, अतएव काम चैतन्य करने वाला होने पर भी, अपने क्षय रोग की शान्ति के लिए, नाक के अगले हिस्से में लटकते हुए मोती के मिससे, तेरे अधरामृत को पी रहा है।

छंद - मालिनी

दिशः वनहरिणीभ्यः स्निग्धवंशच्छवीनां कवलमुपलकोटिच्छिन्नमूलं कुशानाम् ॥

शुकयुवतिकपोलापाण्डु ताम्बूलवल्ली-दलमरूणनखाग्रैः पाटितं वा वधूभ्यः ॥ १०० ॥

अर्थ:

हे पुरुषों ! या तो तुम वन-मृगियों के लिए बांस के दण्डे के समान छविवाली, पत्थर की नोक से कटी हुई मूलवाली, कुश नाम का घास के ग्रास दो अथवा सुन्दरी बहुओं के लिए लाल लाल नाखूनों से तोड़े हुए सुई - तोती के कपोल के समान, जरा जरा पीले रंग के पान दो। सार: दो में से एक काम करो: १) या तो बन में जा ईश्वर भजन करो, अथवा २) घर में रहकर नव-वधुओं को भोगो।

छंद - शिखरिणी

यदाऽऽसीदज्ञानं स्मरतिमिरसञ्चारजनितं तदा सर्वं नारीमयमिदमशेषं जगदभूत्।

इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनदृशां समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ॥ १०१ ॥

अर्थः

जब तक मुझमें काम का अज्ञान-अन्धकार था, तब तक मुझे सारा संसार स्त्रीमय दीखता था; लेकिन अब मैंने आँखों में विवेक-अञ्जन लगाया है, इसलिए मेरी समदृष्टि हो गयी है, मुझे त्रिलोकी ब्रह्ममय दीखती है।

छंद

वैराग्ये सञ्चरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः ।

श्रृङ्गारे रमते कश्चिद् भुवि भेदः परस्परम् ।। १०२ ।।

अर्थः

कोई वैराग्य को पसंद करता है, कोई नीति में मस्त रहता है और कोई श्रृंगार में मग्न रहता है। इस भूतल पर, मनुष्यों में परस्पर इच्छाओं का भेदाभेद है।

छंद

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्य स्पृहा मनोज्ञेऽपि ।

रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनःकामः सरोजिन्याः ।। १०३ ।।

अर्थः

जिसकी जिस चीज़ में रूचि नहीं होती, वह चाहे जैसी सुन्दर क्यों न हो, उसे वह अच्छी नहीं लगती। चन्द्रमा सुन्दर है, परन्तु कमलिनी उसे नहीं चाहती।

सूचना

प्रस्तुत ग्रंथ एवं इसमें संकलित श्लोक रचनाकार (भर्तृहरि) के हैं। समस्त श्लोक गंधर्वलोक प्रतिष्ठान के द्वारा संग्रहित है तदनुसार ग्रंथ में निजी स्तर पर किसी अनैतिकता को स्थान नहीं दिया गया है। सभी श्लोकों का अर्थ साहित्यिक दृष्टि से व्यक्त किए गए हैं, किसी समाज अथवा किसी वर्ण, जाती की निन्दा के उद्देश्य से सामग्री प्रस्तुत नहीं है।

कृपया प्रस्तुत ग्रंथ का रस की दृष्टि से आनंद ग्रास लें।

-गंधर्वलोक प्रतिष्ठान